लाल काया, पर मुँह काला

शरीर काला भी हो तो हो, पर मुँह काला न हो और यदि मुँह काला ही हो तो काया सफेद, उजली, लाल, भूरी या दूसरे अंतर्विरोधी रंग की न हो, नहीं तो देखने का दुस्साहस कम ही लोग कर पाएँगे। 'एक तो करेला दूजा नीम चढ़ा' की कड़वाहट के कारण लोग उसे चखना भूल जाएँगे, हालाँकि एक सीमा तक यह स्वास्थ्यवर्द्धक होगा। आम तौर पर जिसकी काया गहरे रंग की होती है, उसका मुँह भी हल्के रंग का होता है। काला मुँह तभी स्वीकारणीय है, जब पूरी देहयष्टि भी काली हो। जिन जंतुओं का मुँह काला होता है, उन्हें उतना चतुर नहीं माना जाता, जितना कि हल्के या दूसरे रंग के मुख वाले को। कपि कुल में हनुमान आदमी के पूर्वज हैं। उनका मुँह लाल है और वे चतुर तथा बली हैं। शरीर काला तो मुँह काला फिर भी चलेगा, किंतु यह दौड़ेगा कदापि नहीं, क्योंकि चेहरे का काला होना न अपने अभिधार्थ में और न ही व्यंग्यार्थ-लक्ष्यार्थ में अच्छा माना जाता है। लेकिन यह तो जगत के चर प्राणियों की बात है। आधुनिक आविष्कार ऐसे भी हैं, जिनका दैहिक रंग-रूप लाल है और मुँह काला होता है। ये हैं तो अचर-अचल, किंतु अपने आश्रय में आने वाले को उनके गंतव्य स्थान तक सकुशल पहुँचा देते हैं; हजारों किलोमीटर की दूरी तय कराने की क्षमता रखते हैं और मजेदार बात है कि खुद एक-आध कदम भी चलते नहीं। इस प्रकार ये वैसे किसी दूसरे वाहन से भिन्न हैं, जो चल-चलाकर सफर तय कराया करते हैं। अब तक नहीं समझे! शीर्षक भी ऐसा नहीं कि वह सीधे इंगित कर सके कि 'काया लाल और मुँह काला' वाला कौन है, जिस पर सकारात्मक प्रस्तुति की जरूरत आन पड़ी। लोक समाज में जिसका मुँह काला हो जाता है, उससे लोग कन्नी काटने लगते हैं, चाहे एक समय उसके परम भक्त-अनुयायी ही क्यों न रहे हों। ये कोई साधारण लोग नहीं होते, बल्कि इनके आश्रय में जाने वालों की क्वालिटी (ओहदा) और क्वांटिटी (संख्या) सदैव एक-दूसरे को पछाड़ती रही है। सैकड़ों, हजारों, लाखों से बढ़कर करोड़ों भक्त इनके एक इशारे पर कुछ भी कर गुजरने को आमादा दिखते थे; वहीं इनके अनुग्रह-आशीर्वचनों के लिए बड़े-बड़े दिग्गज लालायित रहते थे। अब कोई इन पर लिखता भी है तो वह सकारात्मक नहीं होता। अस्तु, यहाँ जिस काले मुँह और लाल शरीर वाले पर ध्यानाकर्षण का प्रस्ताव है, वह कोई और नहीं, आपकी प्यारी 'पत्र-मंजूषा' है। इसके लिए बचपन में पहेलियाँ अवश्य सुनी होंगी 'लाल ढकना, पहुँचाव पटना।' अब भी आप न समझे हों तो समझ जाइए कि स्थान-स्थान पर सम्मान से टँगा यह 'लेटर बॉक्स' है, जिसे 'पत्र-पेटिका' भी कहते हैं।

जिनकी उम्र जितनी कम है, उन्हें यह जानकर उतना अधिक आश्चर्य होगा कि डाक द्वारा चिट्ठियाँ पहुँचाने के साथ पहले आदमियों को ले जाने-ले आने का इंतजाम होता था। सोचते होंगे कि लेटर बॉक्स आदमी से छोटे होते हैं, जिनमें आदमी अट नहीं सकता और फिर आदमी चलता है, जबकि लेटर बॉक्स स्थिर रहते हैं, तो फिर आदमियों को कैसे अपने मुकाम पर पहुँचाते होंगे। आखिर डाकघर यह काम क्योंकर करेगा! ऐसा सोचना लाजिमी है, लेकिन यह सही है कि ऐसा होता था, बेशक अब नहीं होता। इस समय भी पुराने बसे शहरों में डाक बंगला चौराहा और डाक बंगला रोड नाम के स्थान अपनी खास पहचान रखते हैं। पटना से लेकर अजमेर तक देखा ही होगा, नहीं देखा तो देख आइए। इन मार्गों के समीप डाक कार्यालय नहीं, डाक चौकियाँ हुआ करती थीं। उन्नीसवीं शताब्दी में निर्धारित धनराशि के अग्रिम भुगतान पर डाक विभाग से पालकी, घोड़ा गाड़ी, नाव व डाक गाड़ी में जगह आरक्षित कराया जाता था; सड़क यात्रा को सुगम, सुविधाजनक बनाने के लिए डाक चौकियों पर ठहराव की आरामदायक व्यवस्था कराई जाती थी। ये डाक चौकियाँ ही बाद में डाक बंगला कहलाईं, जो अपनी परंपरागत बसावट-बनावट में बरसों बाद भी भव्य लगती

हैं, अपने नाम-निशान के लिए किसी अन्य लैंडमार्क का मुँह नहीं निहारतीं। डाक सुकूनदायक विश्राम उपलब्ध कराता था, लेकिन सावन महीने में भगवान भोले शंकर का काँवड़ उठाने वाले 'बम', जो कहीं रुकते-ठहरते आराम नहीं फरमाते, वे ही 'डाक बम' कहलाने के अधिकारी होते हैं। उनके लिए बीच में ठहरना निषिद्ध है। डाक भी अपने छोटे-छोटे पड़ावों पर छँटते जाने के बावजूद अनवरतता की मिसाल ही तो है।

खैर, जब चिट्ठीरसा नहीं होते थे, तब भी संदेशों का आदान-प्रदान बखूबी होता था। जिन माध्यमों से संदेश भेजे जाते थे, उनमें काले या कालेनुमा का बहुमत भी था और वर्चस्व भी। कौआ, कोयल, बाज, मैना, कबूतर, भौंरा सब पूर्णतः या अंशतः काले होकर उजाले दिलवाले एवं सहयोगी वृत्ति के थे, तभी मनुष्यों का संदेश सहर्ष पहुँचाया करते थे। बाकी स्वार्थ जबर्दस्ती पूरे हो भी जाएँ, परंतु समाचारों का आदान-प्रदान पशु-पक्षियों की मनमर्जी के बिना असंभव है। इन कालों के अतिरिक्त सुग्गा, तोता, कफू और अनजान बटोही भी खबरनवीसी का कार्य करते थे। ब्रज क्षेत्र में कौए से पियरी के लिए पीहर संदेश भेजने की परिपाटी मिलती है - 'उड़ि-उड़ि काग सुलाखने, उड़ मेरे पीहर जा/मेरे कहियो बाबुल समझाय तो धीयरि माँगत पीयरौं।' खबर न आने पर, बाट जोहते-जोहते थक-हार कर कौए से शगुन उतारकर पूछा जाता था कि हालात कैसे हैं - 'आवा कागा, बैठा कागा हरियाँ वृक्ष/बोल कागा, बोल कागा चौदिसो सगुन!' राजस्थान में कौए से परदेशी पति के आगमन की तिथि टटोली जाती थी - 'उड़ उड़ रै म्हारा रै काळा रे कागला/कद म्हारो पिवजी घर आवै।' पक्षिगण व अन्य जीव कुशल-क्षेम ही नहीं जताते थे, अपितु जो संकेत कर देते थे, वह हो भी जाता था। लेकिन सदैव सब कुछ प्रायोजित ढंग से तो चलता नहीं। संभवतः इसी कारण अथवा अज्ञानता-अनाड़ीपना की वजह से कौए की बोली, साधुओं की भविष्यवाणी, पंडितों की पोथी और व्रत-मनौती सब झूठे सिद्ध हो जाते हैं, क्योंकि अभीप्साओं पर अवरोध जो लगा है - 'झूठ भइले सधुआ, झूठ बियफइया/झूठ भइले कागवा के बोल/झूठ भइले बाभना के पतरा आ पोथिया/कि सइयाँ नाहीं अइले हो मोर।'

अनजान बटोही जिसके पास लेटर बॉक्स नहीं होते, उससे भी संदेश, रुपए तथा छोटी-मोटी पोटली भेजने का रिवाज गाँव-देहात में युग-युग तक चला। ऐसी शिकायतें भी मिलती रहीं कि जितनी सौगात भेजी गईं, उतनी पहुँची नहीं। आखिर ले जाने वाला बटोही भी आदमी ही था, उसकी भी अपनी जीभ की ललक और स्वाद की चसक लगी होती थी। और कोई पारिश्रमिक पाने की कल्पना उसके मन में नहीं समाती थी। लोकराग की यह अनुपम परंपरा 'बाट रे बटोहिया कि तुहूँ मोर भइया/हमरो संदेस ले ले जा' के तौर पर लोक जीवन व साहित्य की बहुमूल्य धरोहर है। भिखारी ठाकुर के पहले लोकनाट्य 'बिदेसिया' में अनजान बटोही के सामने विरुदावली की अभिव्यक्ति है और फिर उससे संदेश भिजवाया जाता है - 'जहुँ तुहुँ जइब रामा पुरबि बनिजिया से/हमरो सनेस लेले जाहु रे बटोहिया।'

पौराणिक काल में तो देव ऋषि नारद खबर इधर-उघर करने के कार्य को कुशलतापूर्वक अंजाम देते थे। हनुमान जी ने अशोक वाटिका में सीता के तिमिराच्छन्न मन को राम का संदेश सुनाकर संजीवनी प्रदान की थी, पर सीता को राम-वृतांत से विश्वास कहाँ हो पाया था, जब तक कि अँगूठी सामने न चमकी - 'तब देखि मुद्रिका मनोहर, राम नाम अंकित सुंदर/चकित चितव मुदरी पहिचानी, हरष विषाद हृदय अकुलानि।' उद्धव के हाथ में पत्र देखकर ब्रजवासी पहले तो झिझकते हैं, फिर झिड़कते हैं कि पत्र से क्या होगा - 'उधौ कहा करैं ले पातीं', किंतु बाद में उस पत्र में श्रीकृष्ण की उपस्थिति के आभास का एहसास कर भावावेश में लिखावट निहारते हैं, उसे बारंबार हृदय से सटाते हैं; अश्रुओं की धार बह निकलती है, जो कागज पर अंकित भावाक्षरों की स्याही से घुलमिल कर श्याम कृष्ण की पाती को स्याममय-कृष्णमय बना देती है -

निरखति अंक स्याम सुंदर कै, बार-बार लखति लै छाती।

लोचन जलि कागद मसि मिलि कैं, हो गई स्याम स्याम पाती।

जब सूरदास कृष्ण की उक्त पाती का चित्र उकेर रहे थे, उससे कुछ ही समय पूर्व पत्रों के आवागमन के निमित्त इंगलैंड में पहले-पहल डाक विभाग का गठन हुआ था। यह 1516 ई. की बात है। फ्रांस में 1576 ई. में, तो भारत में 1766 ई. से डाक व्यवस्था की नींव पड़ी। आजकल प्रशासनिक पत्राचारों को छोड़ दिया जाए तो लोग पत्र लिखना भूल चुके हैं। प्रशासनिक पत्र प्रायः टंकित होते हैं, जिनसे लिखावट की परख नहीं हो सकती। पहले लिखावट से किसी के व्यक्तित्व को, उसकी पढ़ाई-लिखाई को आँका जाता था। उसे पढ़ लेने वालों की कड़ी परीक्षा होती थी। व्यक्तिगत चिट्ठियाँ बहुत कम लिखी जा रही हैं, पर 'लेटर बॉक्स' आज भी यथावत है अपने नए रंग-रूप में, नए-नए यात्रियों के आतिथ्य हेतु तत्पर, उन्हें अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर कराने के लिए उत्सुक है। इस पत्र-मंजूषा में धैर्य-गांभीर्य इतना है कि आँसुओं के गोले को पाकर ठिठकता नहीं, क्रोधानल को लेकर दहकता नहीं और हर्षातिरेक के उच्छ्वास में उछलता नहीं। श्रीकृष्ण के संदेश कि 'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः, वीतराग भयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते' का प्रतिरूप स्तूप है। फिर मुख काला ही है तो क्या है, यह लाल मुँह वाले से उन्नीस नहीं, इक्कीस है।